सबला

वर्ष 3 : अंक 3-4 सेवाग्राम विकास संस्थान, नई दिल्ली जून-जुलाई, 1990

इस अंक में

हमारी बात	1
बेटी और बेटे में अंतर —शशि सायल	2
सामाजिक असमानता के कारण स्त्रियां अधिक मरती हैं —सुहास कुमार	3
आओ हम टीका लगवाएं —गीता	6
परिवार नियोजन और स्त्रियां	7
स्त्री की 'पवित्रता' पुरुष का अहम —लिली सिंह	9
अनपढ़ की पीड़ा	11
मालू-भालू —कमला भसीन	13
एक था शेर का बच्चा	17
जच्चाओं की ऊंची मृत्यु-दर	20
मुन्नी के झुलना गीत —सुमन कोलंगटीवार	21
लाडो को सीख —नीरजा सिंह	22
जमाना बदल गया —शकुंतला सरन	23
जाग बहना जाग —किरण बढेरा	23
चिड़िया की बेबसी —शारदा बहन	25
भोजन बनाने की कला काम आई	26
मेरी कहानी (एक अंग्रजी कविता पर आधारित)	27
जिंदगी का एक घिनोना रूप —संतोष बजाज	29
औरतों को संगठित करने के अनुभव —मंजू देवी	32
दो शिविरों की रपट	33

सहयोग मंडल

कमला भसीन

ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन

'जागोरी' समूह

सुहास कुमार

प्रतिभा गुप्ता

ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका—शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार और यूनीसेफ, नई दिल्ली द्वारा अनुदानप्रदत्त; डाक्टर शारदा जैन (सेवाग्राम विकास संस्थान, 1 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002) द्वारा संपादित व प्रकाशित तथा इन्द्रप्रस्थ प्रेस (सी.बी.टी.), नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 में मुद्रित।

हमारी बात

यह बात माननी होगी कि हमारे देश में स्त्रियों के स्वास्थ्य पर कम ध्यान दिया जाता है। आज भी जचकी काल में बड़ी संख्या में मांओं की मृत्यु होती है, पर इसका असली कारण केवल जचकी नहीं। देखने में भले ही मौतों का कारण जचकी लगे, पर इसका मुख्य कारण औरतों का खराब स्वास्थ्य है। और यह फल है औरतों के प्रति असमानता का।

प्रकृति ने स्त्री को ज्यादा सहनशील शरीर दिया है। एक सी देखभाल हो तो स्त्री की उम्र पुरुष से लंबी होती है। बीमारियों का मुकाबला स्त्री पुरुष की अपेक्षा ज्यादा मजबूती से करती है। वैज्ञानिक तौर पर साबित हो चुका है कि मादा भ्रूण नर भ्रूण से अधिक शक्तिशाली होता है। प्रकृति से मिली ताकत समाज छीन लेता है। इसी कारण स्त्रियों की मृत्यु दर ज्यादा है।

आइए, यह समझें कि समाज स्त्रियों को कैसे कमजोर बनाता है। यदि लड़की को जन्म से ही परिवार पर बोझ माना जाए तो उसमें जीने की इच्छा कैसे पनपेगी ? जन्म से ही बेटी को सत्कार नहीं मिलता। बेटे से बेटी को कम पोषणयुक्त भोजन मिलता है। ब्याह की उम्र तक वह अनगिनत सामाजिक बेड़ियों में जकड़ी रहती है। 10-12 साल की उम्र में लड़की के शरीर में बदलाव आने लगता है। तब उसकी पोषक आहार की जरूरत और बढ़ जाती है। पर इस ओर मांएं ध्यान नहीं देतीं। फलस्वरूप लड़की की तंदुरुस्ती की बुनियाद कमजोर रह जाती है। ब्याह और बच्चे होने पर कमजोर बुनियाद अपना रंग दिखाती है। परिवार की जिम्मेदारी उसे और भी कमजोर बना देती है। घर में सबके खा लेने के बाद जो बचे वह औरत खाए यह हमारा आदर्श है। औरत बस बलिदान करती चली जाती है।

बहनें चाहें तो सामाजिक रूढ़ियों को बदल सकती हैं। बुनियादी बात है कि लड़की को जन्म से सम्मान मिले। लड़कियों की उपेक्षा न हो, उन्हें लड़कों के बराबर समझा जाए। उन्हें आगे बढ़ने के बराबर अवसर मिलें, उनकी समान देखभाल हो। मांएं यह न सोचें कि लड़की पराये घर का पौधा है, उसे क्यों सींचें ? कमजोर पौधा मजबूत पेड़ नहीं बन सकता। यदि वह प्यार से सींचा जाए और उसे उचित पोषण मिले तब देखिए उसकी मजबूती।

संपादिका

यही भ्रम करता बेटी और बेटे में अंतर

मेरी मां देती
बेटे को दूध रोटी
बेटी को सूखी रोटी
बेटा प्यारा, न्यारा और दुलारा है
बुढ़ापे का सहारा है
पर बेटी, वह तो पराई है
बेटे को, सब अच्छे से बढ़कर मिला
कपड़ा हो या जूता
खेल हो या शिक्षा
पर बेटी
उसे तो धीरज और शांति सीखना है
कैसे सोचे वह बढ़िया जूता कपड़ा
खेल की, शिक्षा की
मेरी मां देती
बेटे को दूध रोटी
बेटी को सूखी रोटी।
बुढ़ापे की लाठी बेटा ही तो है,
यही भ्रम तो करता बेटी और
बेटे के बीच यह अंतर
पर आज ! !
बेटी ही देती है मां को दूध रोटी
बेटा, वह तो मजबूर है देने को
सूखी रोटी भी।
बेटी ने अपनी चप्पल मां को दी
और बेटे ने खरीदा अपने लिए जूता
मां सिसकी, रोई, कि बेटा मस्त
अपने में,
बेटी तू ही तो लेती है सुध हमारी।
मेरी मां देती
बेटे को दूध रोटी
और बेटी को सूखी रोटी।

शशि सायल
रायपुर

सामाजिक असमानता के कारण स्त्रियां अधिक मरती हैं

सुहास कुमार

जबलपुर से दिल्ली आते-जाते मैं और मेरे पति अक्सर ग्वालियर में पति की चाची के यहां रुकते हैं। उनकी इकलौती बहू को मैंने सारे-सारे दिन रसोई में काम करते ही देखा। एक साधारण मध्यमवर्गीय परिवार होते हुए भी उनके यहां जैसी खातिरदारी कम ही घरों में मिलती है। किसकी कीमत पर ? बहू के ब्याह को लगभग 10-12 वर्ष हो गए हैं। उसके दो बच्चे हैं। मेरे पति कह रहे थे कि ऐसी स्थिति में उसे टी. बी. नहीं हुई या वह जिंदा है, आश्चर्य की बात है।

इस बार मैंने सोचा कि बहू को कुछ अच्छा उपहार दूंगी। मन में कीमती साड़ी, अच्छी घड़ी या ऐसी कोई चीज़ देने की सोचती रही। फिर विचारा कि उसी से क्यों न पूछ लूं। न जाने मन के किस कोने में वह क्या इच्छा दबाए है।

अकेले पाकर मैंने उससे पूछा कि वह क्या पसंद करेगी ? उसका जवाब सुन मैं हैरान रह गई। कुछ क्षण तो वह चुप रही। फिर दबी जुबान से बोली—"आप मुझे के लिए तिपहिया साइकिल ला दीजिए। उसने बहुत दिनों से रट लगा रखी है।"

उसका जवाब मुझे कई दिनों तक उद्वेलित करता रहा। मैंने अपने मन के अंदर झांक कर देखा तो लगा कि बहुत मानी में हम सब मांओं का यही नज़रिया रहता है। ब्याह के बाद हम अपना अस्तित्व, अपनी इच्छाएं, अपने अरमान इस हद तक भुला देते हैं कि यह भी भूल जाते हैं कि हमें क्या अच्छा लगता है। यह बात भोजन से लेकर जीवन में हर चीज़ और हर आयाम पर लागू होती है।

हीनता के संस्कार

यह हमारी सामाजिक संस्कृति और परंपराओं की देन है। लड़की को यही शिक्षा दी जाती है कि उसे ससुराल जाना है, घर के काम-काज में निपुण होना है और उसे परिस्थितियों के साथ समझौता करना है। उसे सहने की आदत होनी चाहिए। उसे दुःख, कष्ट, अभावों का अनिवार्य अंग मानकर जीना आना चाहिए। दूसरे शब्दों में उसे बताया जाता है कि उसे कर्मप्रधान और सहनशील ज़िंदगी बितानी है। परिस्थितियों को बदलने की बजाए उनसे समझौता करना आना चाहिए।

हांगकांग में हुई एक महिला संगोष्ठी में सुश्री मारकुलीन ने कहा—"तर्कबुद्धि, अपनी बात पर डटे रहना, दृढ़ इच्छाशक्ति और साहस ऐसे गुण हैं जो ज़िंदगी से जूझने के लिए ज़रूरी हैं।" पर ऐसे समाज में जिसमें इन गुणों का पुरुषों में होना ज़रूरी समझा जाता है, स्त्रियों को खुलकर सामने न आने देना ही ठीक माना जाता है। हालांकि ये सब गुण स्वस्थ व्यक्तित्व के निर्माण के लिए ज़रूरी हैं, चाहे पुरुष हो या स्त्री।

अपनी इच्छाओं को पहचानकर उन्हें पूरा करने में कितना संतोष मिलता है, इसे हम में से बिरले ही जानती हैं। शंघाई (चीन) में एक स्त्री संगठन ने 210 परिवारों का (जहां स्त्रियां घर के बाहर काम कर चुकी हैं या कर रही हैं) सर्वे किया। उन्होंने पाया कि केवल 8 फी सदी औरतें ही घर में बच्चों की देखभाल के लिए रहना चाहती हैं। 82 फी सदी घर से बाहर नौकरी करना चाहती हैं।

यह पूछने पर कि यदि पति की आय घर चलाने के लिए काफी है क्या तब भी वे नौकरी करना चाहेंगी ? 80 फी सदी स्त्रियों का उत्तर 'हां' था। वे रोजगार और स्वाधीनता का आपसी संबंध समझती हैं।

कामकाजी औरतों को उनके हक मिल जाएं, यह जरूरी नहीं है। शांति पांच घरों में झाड़ू, पोंछा, बर्तन, कपड़े धोने आदि के काम करती है। सुबह 7 बजे से शाम के 5-6 बजे तक वह खटती है। बीच में 1 से 3 के बीच घर जाती है तो घर की सफाई व रोटी बनाने में लग जाती है। फिर भी पति से जब तब मार खाती रहती है कि वह पूरा पैसा पति के हाथ में नहीं रखती, कमाकर अपने मायके भेज देती है। पति की कमाई ज्यादातर नशेपानी में जाती है। कई बार उसे लगता है कि उसकी जिंदगी नर्क बन गई, पर वह पति का साथ नहीं छोड़ सकती।

बीमारी में भी उपेक्षा

बीमार सीमा के पति से यह पूछने पर कि वह उसे डाक्टर को क्यों नहीं दिखाता, जवाब मिलता है—"यह आप लोगों की तरह नहीं है, हट्टी-कट्टी है। अपने आप ठीक हो जाएगी। यह तो ढोर-डंगर की तरह है।"

मेरे कहने पर कि तुम्हारी औरत इतना काम करती है, उसे बराबरी का हक मिलना चाहिए। वह कहता है—"जाने दीजिए हक को। कमाते हम हैं, घर हमारा है। इसे बैठे-बैठे रोटी मिल जाती है, यह क्या कम है ?" यह तब है जबकि सीमा सुबह दूध दुहती है, गोबर इकट्ठा कर कंडे पाथती है, फिर घर की सफाई, खाना बनाना आदि सब काम करती है। सात महीने की एक बच्ची है, जिस पर सारा दिन मक्खियां भिनभिनाती रहती हैं। उसकी ठीक देखभाल के लिए उसे समय नहीं मिल पाता।

सफाई कर्मचारी जमादारिनें काफी कमा लेती हैं। कच्ची को 900 रु० और पक्की को 1,200 रु० महीने मिल जाता है। यह पूछने पर कि उनके पति उन्हें काफी मानते होंगे, सभी हंसकर कह उठती हैं—"मानते नहीं, मारते हैं। कहते हैं तुम्हें कमाने की क्या जरूरत है, घर बैठो और खाओ। पर हम अपने बूते पर जीती हैं। यह अलग बात है कि डांट या मार खा कर भी हम चुप रहती हैं।"

घर का सब काम तो उन्हें करना ही पड़ता है, पर वे अपनी लड़कियों को स्कूल भेज रही हैं। कहीं कुछ बदल जरूर रहा है।

सपने मर गए

गरीब स्त्रियां दुहरी सामाजिक असमानता की शिकार हैं। परिवार में सबसे बाद में बचा-खुचा खाना लेना, थकावट या बीमारी में भी काम करते रहना, डाक्टरी मदद न मिलना और अपना मन मार कर रखना जिंदगी जीना नहीं जिंदगी का बोझ ढोना है। एक दार्शनिक ने कहा है—"सबसे खतरनाक बात है इंसान के सपनों का मर जाना।" चाची की बहू की तरह हमने अनेक पीड़ित और हताश बहुएं देखी हैं। पढ़ी-लिखी वे अपने पैरों पर खड़ी हो सकती हैं, पर संस्कारवश गुलामी का जीवन बिताने को मजबूर हैं।

स्त्रियां भी दोषी

स्त्रियां भी इस बात के लिए दोषी हैं। ऐसा हम भी मानती हैं, पर यह इसलिए कि उन पर पुरुषों का और पुरुषों के नियमों का दबाव रहता है। बहुत सी मांएं बेटों द्वारा अपनी उम्मीदें पूरी करना चाहती हैं। किसी ने कहा है—भारतीय समाज में पत्नी के गुलाम पति नहीं, मां के गुलाम बेटे जरूर होते हैं। मांएं बेटों को दबाकर रखना चाहती हैं ताकि उन पर उनका अधिकार व्याह के बाद भी बना रहे।

इस स्थिति में औरतों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर क्या असर होता है ? आंकड़े बताते हैं हैं कि संसार में हर चार घंटे में 250 स्त्रियां प्रजनन संबंधी कारणों से मर जाती हैं। विकासशील देशों में यह दर और ज्यादा है। यह केवल स्वास्थ्य सेवाओं की कमी के कारण नहीं है। मुख्य कारण सामाजिक

और आर्थिक हैं। पौष्टिक आहार या पूरा आहार न मिलने और काम का बोझ ज्यादा होने से पहले से ही कमजोर शरीर गर्भ के प्राणी का बोझ उठाने में असमर्थ होता है और जवाब दे जाता है।

कम उम्र में (20 साल से कम) या बड़ी उम्र में (35 वर्ष से अधिक) बच्चे पैदा होना, जल्दी-जल्दी बच्चे पैदा होना, गर्भपात, खून की कमी आदि कारण सामाजिक हैं। स्त्रियों की स्थिति प्रसूति व नवजात शिशुओं की ऊंची मृत्यु-दर में सबसे ज्यादा उजागर होती है।

अब तक 90 फी सदी गर्भ-निरोधक स्त्रियों के इस्तेमाल के लिए हैं। क्या जनसंख्या की वृद्धि के लिए औरतें ही जिम्मदार हैं ? पुरुषों के प्रजनन-चक्र की प्रक्रिया काफी सरल है, इसलिए तर्कबुद्धि से सोचा जाए तो परिवार नियोजन के साधन उनके लिए भी कम से कम 50 फी सदी तो बनाए ही जा सकते हैं। स्त्रियों से ज्यादा पुरुषों को परिवार नियोजन की शिक्षा की जरूरत है। बच्चे हों या न हों, अधिकतर निर्णय उन्हीं का होता है।

हर श्रेणी की औरत जानती है कि बार-बार बच्चा होने से खतरा है। वह यह भी जानती है कि परिवार के लिए पुरुष वंशज पैदा करना भी उसका फर्ज है। वह उसे अपना सहारा भी समझती है।

शिक्षा की जरूरत

विश्व के अनेक देशों और स्वयं भारत में केरल की मिसाल से हम समझ सकती हैं कि जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार और उत्पादन के साधनों का बेहतर वितरण हुआ है और जन-जीवन सुधरा है, वहां जनसंख्या की दर में कमी शुरू हो गई है। जनसंख्या के बढ़ने से गरीबी नहीं बढ़ती, बल्कि गरीबी के कारण जनसंख्या बढ़ती है।

स्त्रियों को अनपढ़, गंवार और नासमझ समझा जाता है। कितने पुरुष जानते हैं कि 40 साल की उम्र में जो उनका स्वास्थ्य या उनकी बुद्धि है वह इस समय के खानपान या परिस्थितियों के कारण नहीं बल्कि उनकी जीवन-यात्रा मां के गर्भ से शुरू होती है। उनके शारीरिक व मानसिक विकास की सीमा काफी हद तक तभी निर्धारित हो चुकी होती है।

1972 में भारतीय मनोवैज्ञानिक मिर्ज़ा साजिद अली खान ने बताया कि हमारे जीवन की सफलताओं और असफलताओं के पीछे काफी कुछ वही हालात हैं, जो हमें मां के पेट में मिले। गर्भस्थ-शिशु को जितना प्यार-दुलार मिलेगा वह उतना ही प्यार-दुलार बांटेगा।

अब तो पश्चिम के मनोवैज्ञानिक भी मानते हैं कि गर्भावस्था के दौरान मां की मानसिक स्थिति का बच्चे पर सीधा असर पड़ता है। मिर्जा खान का कहना है कि गुनगुने तेल से पेट की दिन में दो बार हल्की मालिश की जाए तो भ्रूण गर्भाशय में दुलार की गर्मी महसूस करेगा। ममतामयी देखभाल से बच्चे को सही संस्कार दिए जा सकते हैं।

भारत में हालत यह है कि हर एक प्रसूति-मृत्यु के पीछे 18 स्त्रियां ऐसी हैं जो मरने से तो बच जाती हैं, पर सदा के लिए उन्हें कुछ न कुछ रोग लग जाता है। गांवों और पिछड़े इलाकों में स्वास्थ्य केंद्र या अस्पताल दूर होने के कारण अनेक मौतें हो जाती हैं। कौलंबिया, चिली, युगांडा, क्यूबा और मलावी आदि देशों में प्रसूति प्रतीक्षागृह खोले गए हैं जिनका खर्च अस्पताल से बहुत कम होता है। यदि समाज के लोग थोड़ा श्रमदान करें तो बहुत सी जच्चाओं को मरने से बचाया जा सकता है। छूत से हुई मौतों को सफाई रखकर बचाया जा सकता है। जच्चा की गर्भावस्था के समय ठीक देखभाल, उचित भोजन, टिटेनस का टीका आदि से अनेक मौतें रोकी जा सकती हैं।

इन सबसे बढ़कर स्त्रियों को स्वयं अपना महत्व समझना होगा, अपने जीने के अधिकार समझकर अपने हक मांगने होंगे तभी उनका जीवन सुधरेगा।□

जिंदगी को जीना सीख

मिली है जिंदगी एक बार
क्यों जीना इसे बोझ समझकर
क्यों जीना इसे डर डर कर
खुद को पहचानकर
जिंदगी को जीना सीख ।

मत मरने दे अपने सपनों को
अपनी चाहतों को जानकर
नए रास्ते निकाल कर
अपनी पहचान बनाकर
जिंदगी को जीना सीख ।

खून पसीने से बनाए घर में
अधिकार से रहना सीख
गर प्यार ममता की नहीं कीमत
नए मूल्य अपनाकर
जिंदगी को जीना सीख ।

है ख़ुदी बड़ी चीज़
मत गुलामी को मंजूर कर
अपने हक़ों की मांग कर
सिर उठाकर शान से
जिंदगी को जीना सीख ।

तेरे जीवन का है मोल बड़ा
तेरे हाथों में है ताक़त बड़ी
तेरे पास हैं हथियार कई
अपनी ताक़त को पहचानकर
जिंदगी को जीना सीख।

—सुहास कुमार

आओ हम टीका लगवाएं हमारी जच्चा को

(लोक गीत--'सज रही मां मोरी सुनहरी गोटे में' की तर्ज पर)

आओ हम टीका लगवाएं हमारी जच्चा को
हमारी जच्चा को हमारे बच्चे को
टी टी का है टीका करे टिटनिस से सुरक्षा
टिटनिस से सुरक्षा दिलवाएं जच्चा को
छठे - सातवें महीने लगवाएं जच्चा को।

बी सी जी का टीका करे टी बी से सुरक्षा
टी बी से सुरक्षा दिलवाएं बच्चे को
जन्मते ही टीका लगवाएं बच्चे को।

दवा पिलाना है पोलियो से सुरक्षा
पोलियो से सुरक्षा दिलवाएं बच्चे को
एक साल से पहले पिलवाएं बच्चे को।

डी पी टी का टीका बड़ा है हितकारी
तीन रोगों से सुरक्षा सुनो बहन हमारी
गलघोटू, काली खांसी, टिटनिस की बीमारी
तीनों रोग पास न आएं हमारे बच्चे के।

'मीजल' का है मतलब खसरे से सुरक्षा
9 महीने बाद लगवाएं बच्चे को
1 साल से पहले लगवाएं बच्चे को
आओ हम टीका लगवाएं बच्चे को
हमारी जच्चा को हमारे बच्चे को

—गीता, पक्का बाग

परिवार नियोजन और स्त्रियां

स्त्रियां परिवार नियोजन की केंद्र बिंदु हैं। यह बात इससे साफ जाहिर होती है कि 80 फी सदी से ज्यादा तरीके उन्हीं को ध्यान में रखकर तैयार किए गए हैं। दूसरी ओर जहां उनका महत्व समझा जाना चाहिए, उनके स्वास्थ्य और प्रजनन से जुड़ी समस्याएं उनकी व्यक्तिगत समस्याएं मानकर भुला दी जाती हैं।

महिला संगठनों के कार्यकर्ता ग्रामीण व शहरी झुग्गी बस्तियों में रहने वाली औरतों के निकट संपर्क में आते हैं। उनकी जांच बताती है कि थोपे गए परिवार नियोजन तरीकों से औरतों के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है। गरीबी में इलाज का खर्च और बढ़ जाता है।

जनसंख्या नियंत्रण में दो बुनियादी बातों पर ध्यान देना जरूरी है। एक—बुनियादी जरूरतें जैसे रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार मिलनी चाहिएं। दो—औरतों का प्रजनन पर बुनियादी अधिकार।

इतिहास गवाह है कि यदि लोगों की जिंदगी ज्यादा निश्चित और सुरक्षित होगी तो ज्यादा बच्चों की इच्छा कम हो जाती है। जब तक गरीबी और बच्चों की मृत्यु-दर ऊंची रहेगी, तब तक मां-बाप बच्चों, लड़कों को अपने बुढ़ापे का सहारा मानते रहेंगे। लगभग हर पिता दो बेटे चाहता है, इसलिए कि एक नालायक निकल जाए तो दूसरा उनकी देख-रेख कर लेगा।

आर्थिक विकास काफी नहीं है। उसका वितरण जनसंख्या के कितने बड़े भाग में हुआ है यह भी महत्वपूर्ण है। क्यूबा, चीन, श्री लंका, कोरिया और ताइवान इस बात के उदाहरण हैं। इन देशों में पश्चिमी देशों जितनी खुशहाली नहीं है। दूसरी ओर भारत जैसे देशों में विकास तो हुआ,

प्रति व्यक्ति औसत आय भी बढ़ी, लेकिन उसका लाभ थोड़े लोग ही उठा रहे हैं। आम जनता गरीब और अशिक्षित है। परिवार नियोजन पर भारी सरकारी खर्च के बावजूद जनसंख्या की बढ़ोतरी में कोई खास कमी नहीं आई।

असफलता के कारण

परिवार नियोजन की असफलता का कारण गरीबी और अशिक्षा ही नहीं है। इसे कारगर बनाने का समूचा तरीका ही गलत है। स्त्रियां केंद्र बिंदु तो हैं, पर उन्हें किसी भी स्तर पर साथ लेकर चलने का कार्यक्रम नहीं बनाया जाता। उनका स्वास्थ्य और सुरक्षा सबसे आखीर में आती है, उनका जो फैसला सबसे पहले होना चाहिए, उसका अधिकार उन्हें सबसे बाद में मिलता है और कई बार मिलता भी नहीं।

पालन-पोषण और बड़े परिवार के बोझ के अलावा लगातार बच्चे जनने का शारीरिक कष्ट ही इतना ज्यादा होता है कि औरतें ज्यादा बच्चे जनना नहीं चाहतीं, लेकिन अनेक कारणों से उनके पास इसका विकल्प नहीं है। कई बार पति की इच्छा के कारण दबना पड़ता है। कई बार परिवार नियोजन के तरीकों का ठीक ज्ञान नहीं होता। कई बार वे आस-पास इन तरीकों के बुरे नतीजों को देखकर डर जाती हैं। कई बार बहुत कमजोर शरीर या खून की कमी के कारण डाक्टरनी उन्हें गर्भपात की राय नहीं देतीं, क्योंकि उसमें बच्चा जनने से ज्यादा जान का खतरा है।

एक औरत को आपरेशन की सलाह दी गई तो उसने बताया कि उसके सिर्फ एक लड़का है। यदि दो होते तो उसका पति राजी हो जाता। दो लड़कियां भी हैं, पर उनकी कोई गिनती नहीं। जहां तक बुढ़ापे में सहारे का सवाल है बूढ़ी मुसलमान औरतें जवान औरतों से ज्यादा शिकायत कर रही थीं। अब वे खुदा से दुआ मांगती हैं कि उनकी बेटियों को "इस सबसे न गुजरना पड़े जिससे हम गुजर रहे हैं।"

पति राजी नहीं

कीनिया देश की एक स्वास्थ्य कार्यकर्ती ने औरतों की कठिनाइयां बताईं। एक औरत ने उससे कहा— "मैं परिवार नियोजन का तरीका अपनाना चाहती हूं, पर मेरा पति नहीं मानता। मैंने उसे मनाने की काफी कोशिश की पर वह मेरी एक नहीं सुनता। पुरुष परिवार नियोजन का महत्व नहीं समझते। वे परिवार नियोजन केंद्र नहीं जाते, औरतें दवाइयों से डरती हैं, अपने पतियों से डरती हैं।"

एक दूसरी औरत ने कहा, "आदमी तो चाहते हैं कि हमारे बच्चे होते रहें, ताकि हमें आजादी न रहे।" तीसरी औरत ने बताया कि "आई. यू. डी. (कापर टी) के बारे में मेरे पति को कुछ मालूम नहीं था। मेरे बताने पर वह सुनता ही नहीं था, पर जब उसने रेडियो पर सुना तब उसने मेरी बात मानी।"

पेरु देश में गर्भपात कराने वाली स्त्री को जेल भुगतनी पड़ती है। अनेक देशों में यह गैरकानूनी है। निकारागुआ में केवल बलात्कार की सूरत में गर्भपात कानूनी है। क्यूबा ही एकमात्र लेटिन अमरीकी देश है जहां औरतों को बिना किसी बंधन गर्भपात का पूरा हक है।

नाइजीरिया और युगांडा में बांझपन को बुरा माना जाता है। प्रजनन क्षमता की पूजा होती है, लेकिन बांझपन के बुनियादी कारण, जैसे टी.बी., बाल-विवाह, यौन रोग, गंदगी और प्रसव की समस्याओं को दूर करने की कोशिश नहीं की जाती है।

जापान की अभूतपूर्व आर्थिक और तकनीकी तरक्की में औरतों का बड़ा योगदान रहा, फिर भी वहां पुरुष स्त्रियों को घर और बच्चों तक सीमित रखना चाहते हैं।

अनेक मुद्दों पर विचार

परिवार नियोजन कार्यक्रम में इन सब मुद्दों की भूमिका पर विचार-विमर्श की जरूरत है। जनसंख्या परिषद के फारेस्ट ग्रीनलैंड का मत है कि "गर्भ निरोधक शोध में ऊपर से नीचे तक पुरुष हावी है और उनमें से कई का मत है कि प्रजनन से सिर्फ

औरतों को जोड़ना है। इसलिए कार्यक्रमों का मुख्य लक्ष्य स्त्रियां रहती हैं।"

गर्भ निरोधक खतरों को मान लेना उतना ही व्यक्तिगत सवाल है जितना वैज्ञानिक। कई औरतें गर्भ रोकने के लिए स्वास्थ्य का खतरा उठाने को तैयार हैं, पर उन्हें खतरों को जानने का हक तो है। फैसला उन्हीं का होना चाहिए।

अब सवाल है कि ऊपर दिए तथ्यों के आधार पर जनसंख्या की बढ़ोतरी के लिए औरतों को किस हद तक ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है। जनसंख्या नियंत्रण में मुख्य रूप से नीचे लिखे तथ्य काम करते हैं।

1. आमदनी और भूमि का बराबरी का वितरण। 2. रोज़गार के अवसर। 3. सामाजिक रक्षा (इसमें सरकार की ओर से दी सुरक्षा शामिल है)। 4. साधारणजन का शिक्षित होना। 5. औरतों का दर्जा। 6. ज्यादा उम्र में शादी। 7. स्वास्थ्य केंद्रों और परिवार नियोजन तक औरतों की पहुंच। 8. औरतों का प्रजनन-संबंधी अधिकार।

शिक्षा और कम बच्चे

विकसित देशों में यदि स्त्रियां केवल 7-8 साल तक भी स्कूली शिक्षा पा लेती हैं तो उनके कम बच्चे होते देखे गए है। जहां औरतों का दर्जा बेहतर है, फैसले लेने का अधिकार उनके हाथ में है, वे घर से बाहर काम करती हैं, वहां उनमें सुरक्षा की भावना बढ़ती है। उनके रहन-सहन में बदलाव आता है। उन्हें अपनी पहचान बनाने के नए माध्यम मिलते हैं।

स्त्रियों को स्वयं नए रास्ते निकालने की कोशिश करनी होगी। जब पति-पत्नी मिलकर और सोच-समझकर फैसले लेंगे तभी मानव का कल्याण संभव होगा। सरकार और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भी अधिक मानवीय दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत है।

साभार—ज़ंजीरों को तोड़कर
किशोर भारती

स्त्री की 'पवित्रता' पुरुष का अहम

लिली सिंह

भारतीय समाज में जहां पुरुष व औरत की बराबरी के दावे हैं, तो व्यावहारिक और सामाजिक पूर्वाग्रह भी हैं जो बराबरी को चुनौती के तौर पर उभारते हैं। सामाजिक दासता और रूढ़ियों की शिकार औरतें मिथकीय शोषणों को स्वीकार करने के लिए मजबूर हैं। इस मजबूरी का ज्वलंत रूप देखने को मिलता है स्त्री की पवित्रता में जहां स्त्री की सारी सहनशीलता एक झटके में खत्म हो जाती है। औरतों के शरीर की पवित्रता की आड़ में उन पर तरह-तरह के अत्याचार किए गए हैं। इस पवित्रता की प्रक्रिया-स्वरूप उसे छलना, कलंकिनी, वेश्या, कुलटा आदि शब्द उपहार-स्वरूप उसे दिए गए। आज भी इसके खिलाफ आवाज उठाने पर डरावने सपने दिखा कर उसे चुप करा देने की कोशिश की जाती है।

औरत सदियों से पवित्रता का सबूत देती रही है। कुंती की तरह छिपकर जीने से द्रोपदी के विद्रोही व्यक्तित्व को वह बार-बार दुहराती रही है। फिर भी वह इस एक शब्द के आगे आत्मसमर्पण करती रही है। औरतों के समृद्ध अतीत से जुड़े वेद, पुराण, मनुस्मृति और बाईबिल की भूमिका जहां बहुत उदारवादी रही है, वेहद कठोर भी रही है। बाईबिल में 'ईव' को फल खाने के बाद अभिशाप मिला और यह भी कहा गया कि वह सदा पुरुष के अनुशासन में रहेगी। मनु ने तो औरत की गनती जूड़ों के साथ करने को कहा और उसे बाप-भाई-पति व बेटे के अधिकार में दब कर रहने को कहा। क्यों दब कर रहे इसे साफ कर दिया गया। ऐसा न करने पर वह अपवित्र हो सकती थी। पर-पुरुष से संबंध बना सकती थी, उसका पतिव्रत धर्म खंडित हो सकता था। इसके बावजूद 'संदिग्धता' में कोई कमी नहीं आई। पवित्रता पर संदेह ज्यों का त्यों रहा।

सिर्फ औरत पर बंदिशें

ऐतिहासिक प्रसंगों को देखने पर एक बात साफ हो जाती है कि चूंकि नियम और कानून पुरुषों ने बनाये थे और ग्रंथ भी उन्हीं ने रचे थे, इसलिए पूर्वाग्रह आश्चर्यजनक नहीं। आज के पढ़े-लिखे समाज में 'पवित्रता' शब्द का महत्व मनोवैज्ञानिक कारणों स दिखाई देता है। पुरुष का अहमवादी दृष्टिकोण, दमनकारी व्यक्तित्व और विविध 'काम्प्लेक्स' के कारण स्त्री के साथ अविश्वास को जोड़कर चलने की सामान्य प्रवृत्ति बन गई है। स्त्री पर हावी होने में पुरुष को अपना पुरुषत्व दिखता है।

औरत सामाजिक प्रतिष्ठा व मर्यादा की दृष्टि से न सिर्फ पुरुष की तुलना में हीन मानी गई, बल्कि समाज के सबसे गिरे और पिछड़े वर्ग के करीब बैठाई गई है, सिर्फ स्पष्ट नहीं मानी गई है, क्योंकि उससे संतान संकट पैदा हो सकता था। यौन पवित्रता का इतनी कठोरता के साथ लागू किया जाना स्त्री की अवनति का मुख्य कारण रहा है। विवाह-योग्य कन्या का पवित्र होना जरूरी समझा गया। इसी पवित्रता के डर से बाल-विवाह जैसी कुप्रथा ने जन्म लिया पर इसमें किसी मनीषी को कोई दोष दिखाई नहीं दिया। उनके मन में काम-वासना पैदा हो जाने भर से कन्या के दूषित हो जाने की बात बैठी रही। समूचे इतिहास में औरत का रूप उपभोग की वस्तु या पवित्रता की कसौटी तक सीमित रहा। विकास की अन्य किसी प्रक्रिया से उसे जोड़ने की जरूरत नहीं समझी गई। भगवान बुद्ध को स्त्री बाधा-स्वरूप दिखलाई दी। संघ में स्त्रियों के आने से संघ के अस्तित्व के लिए खतरा दिखाई देने लगा। सिर्फ विकार के रूप में स्त्री को देखने वाले भगवान बुद्ध को स्त्री पथभ्रष्टा से अधिक कुछ नहीं दिखाई दी। बुद्ध के समय वाली तुच्छता अभी नहीं है।

पुरुष जैसे-जैसे व्यभिचारी होता गया पवित्रता की कठोरता बढ़ती चली गई। अपनी अपवित्रता छिपाए रखने के लिए वह अपनी पत्नी से पवित्रता कठोरता से मांगने लगा। यानी स्त्री शरीर का उपभोग करने वाला (नैतिक व अनैतिक दोनों रूप में) पुरुष स्त्री का निर्णायक बन गया।

सामाजिक कठोरता में कमी नहीं

आज औरतों को कानूनी संरक्षण मिल जाने से पवित्रता की कठोरता कुछ हद तक कम हो गई है, लेकिन परिभाषा ज्यों की त्यों है। ब्याह से पहले वह पुरुष द्वारा छुई न गई हो, उसका कौमार्य खंडित न हुआ हो और ब्याह के बाद पति के अलावा उसके किसी अन्य पुरुष से शारीरिक संबंध न हों। लेकिन पुरुष के लिए आज तक कोई नियम नहीं बनाया गया है। वह व्यभिचारी, परस्त्रीगामी या वेश्यागामी कुछ भी हो सकता है, पत्नी उसे कुछ नहीं कह सकती।

पुरुष गृहस्थ और वैश्यागामी दोनों भूमिकाओं को एक साथ निभा सकता है। स्त्री एक साथ दो पुरुषों से संबंध नहीं रख सकती। वह या तो पत्नी हो सकती है या वेश्या। पवित्रता का यह रूप आज भी ज्यों का त्यों है। स्त्री की पवित्रता को खंडित करने वाला पुरुष ही है, चाहे वह पति के रूप में हो या अन्य रूप में। फिर तमाम बंदिशें औरतों पर ही क्यों ?

'पवित्रता' शब्द के मानवीय पहलुओं पर भी गौर किया जाना चाहिए। यह ऐसी मनोवैज्ञानिक युक्ति है, जिसे थोड़ी भी जागरूक और आत्मनिर्भर औरत नकार सकती है। जब पुरुष एक स्त्री तक सीमित नहीं रह सका है और अधिकार-पूर्वक अन्य स्त्रियों का उपभोग करता है, तब वह औरत से पवित्रता की मांग करने का साहस कैसे कर सकता है। सदियों का इतिहास पुरुषों की कामुक प्रवृत्ति का गवाह रहा है। तब मौजूदा संदर्भ में स्त्री-चरित्र का निर्णायक बन बैठना न तो ईमानदारी है और न समझदारी। नारी चरित्र के निर्णयकर्त्ता के रूप में पुरुष को कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। □

अनपढ़ की पीड़ा

गांव से शहर आया रामू कदम कदम पर दिक्कतें महसूस करता है। गांव में जब स्कूल जाना था तब किसी ने नहीं बताया कि स्कूल जाना चाहिए या पढ़ना-लिखना कितना ज़रूरी है। आज जब वह पढ़ना चाहता है उसे नहीं मालूम कि वह कहां और कैसे पढ़ सकता है।

रिक्शा घसीटते-घसीटते थककर सोचता है कि काश वह पढ़ा होता। उसके लिए कुछ और रास्ते रोज़ी-रोटी कमाने के खुले होते। अब पढ़ने की बात सोचे कि परिवार के लिए रोटी जुगाड़ने की।

मूर्ति बनाने में माहिर पर अनपढ़ गोपी को बड़ी शर्म आती है। उसे चार लोगों से पूछना पड़ता है कि जयपुर से मालपुरा कौन सी बस जाएगी। तब भी उसके मन में गलत बस में चढ़ जाने का डर बना रहता है।

शिबू दस साल की उम्र में ही जेब कतरे का काम करने के लिए ढकेल दिया गया था। शहर आकर उसे कभी-कभी लगता कि वह इंसान नहीं जानवर है। काश वह पढ़ा होता। इस दमघोटू वातावरण से बाहर निकलने की राह वह ढूंढ नहीं पाता है। मां-बाप कह देते थे कि पढ़ लिख कर क्या कलक्टर बनना है। पर अब वह जान गया है कि कलक्टर न सही इंसान तो बन सकेगा। यह कचोट उसके दिल में बहुत गहरी है।

क्या करें?

शराबी पति से दुखी शीला दो बच्चों की मां अपने भूखे बच्चों के लिए भीख मांगने को मजबूर है। वह सोच नहीं पाती कि नन्हें बच्चों के साथ अन्य क्या काम कर सकती है।

देवरानी पढ़ी-लिखी आती है तो जिठानी अपने को हीन समझने लगती है। उसे अपना अनपढ़ होना खलने लगता है।

खेतों में काम करती राधा जानती है कि इतनी मेहनत करने पर भी वह ज़्यादा नहीं कमा पाती। खेती के आधुनिक तरीकों की उसे जानकारी नहीं। पुरुष तो ट्रैक्टर चला कर बुवाई कर लेते हैं।

चूना-पत्थर ढोने वाली मीतो जानती है कि पढ़ी-लिखी औरत के मुकाबिले उसे बहुत कम

मजदूरी मिलती है। उसका काम भी छोटा कहलाता है। अनपढ़ होने के कारण उसे नया कुछ सूझता ही नहीं।

अनपढ़ रमा को अपने पढ़े-लिखे न होने का गम तो है ही। यह गम भी खाता रहता है कि वह अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेज पा रही है।

पढ़ने की प्रेरणा

अभिलाषा तो है... किसी अनपढ़ को पढ़ी-लिखी बीबी मिल जाए तो वह साक्षर होने की ठान लेता है। दिनेश की बीबी इंटर पास आई जबकि वह केवल मिडिल (आठवीं) पास था। शादी के बाद उसने हाई स्कूल पास किया, इंटर किया। वह सरकारी दफ्तर में चपरासी से क्लर्क बन गया। अब उसमें और आगे बढ़ने की लगन है।

बहुतों के मन में साक्षर होने की अभिलाषा है, लेकिन "भूखे भजन न होए गोपाला", पर पहले उन्हें रोज़ी-रोटी जुटाने के लिए काम देना होगा। जब तक सरकार आर्थिक परिस्थिति में सुधार लाने की साथ-साथ कोशिश नही करती तब तक साक्षरता की योजनाएं कैसे सफल हो पाएंगी?

पुरानी धारणा कि पढ़-लिख कर क्या होगा ख़त्म करनी होगी। ऐसे भी लोग हैं जो दिल से पढ़-लिख लेना चाहते हैं। उनके रास्ते में आ रही बाधाओं को दूर करना होगा। ऐसा न हो कि सरकार की योजनाएं और लोगों की इच्छाएं दो समानांतर रेखाओं की तरह मिल ही न सकें। जो अपने बच्चों को पढ़ाने की इच्छा संजोए हैं उन तक शिक्षा पहुंचानी है।

(राज्य संदर्भ केन्द्र, जयपुर के एक सर्वेक्षण और श्रीमती लक्ष्मी अशोक की रपट पर आधारित)

दहेज चाहने वालों के लिए बुरी खबर

नासिक में एक लड़की के माता-पिता ने अपने होने वाले दामाद के परिवार की अच्छी खबर ली। वर के माता-पिता ने ठीक शादी के मौके पर दस हज़ार रुपए की मांग की। दुल्हन के माता-पिता लड़की के कुंवारी रह जाने के डर से घबराए नहीं। उन्होंने बहुत अक्लमंदी से स्थिति का सामना किया। लड़की के पिता सीधे पुलिस थाने पहुंचे और शिकायत दर्ज कराई। पुलिस ने भी कार्यवाही करने में देर नहीं लगाई। लड़के के मां-बाप को दहेज कानून के तहत गिरफ़्तार कर लिया।

गंगोह थाने के वज़ीरपुर गांव की मूर्ति देवी ने अपने पति महेश, ससुर मुल्की राज और सास शांति पर आरोप लगाया था। उसकी शिकायत थी कि कम दहेज लाने के कारण उसके पति व सास-ससुर उसे तरह-तरह से पीड़ित करते थे। दहेज का सब सामान भी उन्होंने हड़प कर उसे घर से बाहर निकाल दिया। इस मामले में सत्र न्यायाधीश आर.बी. लाल ने पति एवं सास-ससुर को छह महीने के कठोर कारावास और एक-एक हजार रुपए जुर्माने की सज़ा सुनाई।

साभार—'दिनमान टाइम्स'

मालू भालू

कमला भसीन

नौर्थ पोल के बर्फ़ीले मैदान में
रहती थी इक भालू
उजला बर्फ़ सा रंग था उसका
और नाम था उसका मालू

उम्र में छोटी थी मालू
रहती थी मां बाप के संग
खूब से सीगल दोस्त थे उसके
बर्फ़ में सब करते हुड़दंग

इक दिन अब्बा भालू बोले
बेटी हो जाओ होशियार
सुना है दुष्ट शिकारी आकर
करने लगे हैं यहां शिकार

मालू छिपना सीख चुकी थी
झट वह हो गई गोल मटोल
बंद की उसने आंखें अपनी
लगे बर्फ़ की बॉल वह गोल

आंखें फाड़े भटके शिकारी
पर शिकार वे देख न पाए
थक हार कर लौटे जब वे
सारे भालू फिर बाहर आए

धीरे धीरे मां बाप ने
मालू को सब सिखलाया
सालमन मछली कैसे पकड़ें
यह भी उसको बतलाया

इक दिन मालू मां से बोली
मां मैं सैर को जाऊंगी
आसमान के पार है क्या
यह मैं देख कर आऊंगी

मां ने कहा धर धीरज बेटी
अगली गर्मी जब आएगी
तैरना तुझे सिखा देंगे हम
तब तू दूर घूम पाएगी

कैसा धीरज कैसी गर्मी
मालू को था चैन कहां
उसके दिल में जोश था ऐसा
घूम वह आती तीन जहां

मां बाप को बिना बताए
मालू करने निकली सैर
सूरज की किरणों की ओर
बढ़ने लगे थे उसके पैर

मालू की मां चौंकी
जब मालू उसको नज़र न आई
मालू मालू कह कर उसने
ज़ोरों से आवाज़ लगाई

मालू पहुंच चुकी थी दूर
उस तक न पहुंची आवाज़
इक छोटी सी सीगल ने
मां को कहा मालू का राज़

सीगल बोली भालू मासी
मालू गई सूरज की ओर
यह सुन कर मालू की मां
दौड़ पड़ी लगा कर ज़ोर

इतने में मालू की मां को
सुनाई पड़ी पुरज़ोर गड़गड़ाहट
उस बेचारी को तो अब
होने लगी कुछ और घबराहट

जिस बर्फ़ीली चट्टान पर
थी मालू जा कर हुई खड़ी
वही चट्टान बनी आईसबर्ग
और आईस बैंक से छिटक पड़ी

मालू संग उस आईसबर्ग को
ज्वार बहा कर लिए जाता था
डरी हुई छोटी मालू को
कुछ भी समझ नहीं आता था

छपाक! मालू की मां ने
पानी में दी लगा छलांग
बहते आईसबर्ग पर पहुंची
बर्फ़ीले पानी को लांघ

डरी मालू को पहले मां ने
अपनी छाती से चिपकाया
तैरना होगा आज उसे भी
मां ने बेटी को समझाया

मालू बोली कभी नहीं तैरी हूं
आज मैं तैरूंगीं कैसे
मां बोली घबरा मत बेटी
करना वही करूं मैं जैसे

तैरे बिना न चारा कोई
समझ यह बात मालू को आई
पकड़ हाथ बहादुर मां का
उसने पानी में छलांग लगाई

बहादुर मां की बहादुर बेटी
छोड़ छाड़ कर अपना डर
लगी तैरने जैसे तैसे
अपनी पूरी हिम्मत धर

कुदरती तैराक है मालू
मां तो उसकी जानती थी
मालू की निडरता को भी
बखूबी वह पहचानती थी

कुछ ही देर में मिला किनारा
बच गई मालू की जान
मां बेटी के चेहरे पर फिर
फूट पड़ी सुन्दर मुस्कान

मालू के अभिनंदन को
किनारे पर थी भीड़ खड़ी
पापा भालू, सीगल
और खड़ी इक सील बड़ी।

एक था शेर का बच्चा

शेर का छोटा-सा बच्चा, निपट अकेला, असहाय। बच्चा जंगल में रास्ता भटक गया। जंगल के बाहर गांव की पगडंडी पर आ गया। वहां गधों का एक झुंड खड़ा था। शेर का बच्चा उनमें मिल गया। गधों के मालिक ने भी नहीं देखा। शेर का बच्चा गधों के साथ रहकर पलने लगा। वह अपने असली रूप को जानता ही नहीं था। वह अपने को गधा ही मान बैठा।

एक दिन गधों के साथ वह एक जंगल में जा रहा था। सामने से एक शेर आया। गधे डर के मारे रेंकने लगे। शेर का बच्चा भी उन्हीं की तरह डर दिखा रहा था। शेर ने उसे पहचान लिया। वह बोला—"तू गधा नहीं, शेर का बच्चा है। तू क्यों डर कर भाग रहा है? अपनी ताकत को पहचान।"

शेर के बच्चे ने पास बहती नदी में अपनी शक्ल देखी। वह गधे से नहीं, शेर से मिलती थी।

उस दिन से शेर का बच्चा निडर हो कर जंगल में रहने लगा। उसने अपनी ताकत पहचान ली थी।

शेरनी शेर से ज्यादा बहादुर और निडर होती है। खतरे के सामने शेर अपनी जान बचाने को भाग खड़ा होता है। शेरनी बच्चे को छोड़ कभी नहीं भागती। वह दुश्मन पर हमला करती है।

हमें भी शेरनी के समान होना है। अपनी ताकत पहचानें। डर कर रहना छोड़ें।

यही बात इंसान पर लागू होती है। खासकर औरतों पर। औरतों को अपनी ताकत का अहसास नहीं होता। वे सदा अपने को कमज़ोर मानती आई हैं। एक बार अपनी ताकत का अहसास हो जाए तो जिंदगी का रंग निखर आएगा।

□

पुरुषों ने स्त्रियों के हाथ-पांव में बेड़ी डाल दी (गहनों के रूप में)। इन्हीं बेड़ियों के कारण स्त्रियां अकेले बाहर जाने में डरती हैं। पुरुषों ने स्त्रियों को डरपोक बनाया है। उनकी नाक में, गले में, हाथ में, पांव में सोने की बेड़िया डाल दी हैं ताकि पुरुषों के काबू में रहें। स्त्रियों को यह सब छोड़कर निडर बनना चाहिए।

—विनोबा भावे

फैसले लेने में औरत की भागीदारी

मैं एक भैंस
लाना चाहता हूँ।
तुम्हारी क्या राय है?
गांव में बीमारी के
कारण बहुत भैंस मर
गईं। मेरी राय में
अभी मत खरीदो।

जच्चाओं की ऊंची मृत्यु-दर

(डाक्टर पेंडसे द्वारा उदयपुर के आर.एन.टी. मैडिकल कालिज में किए एक अध्ययन की रपट पर आधारित)

मध्य 1983 से मध्य 1985 तक अस्पताल में आए 100 केसों का अध्ययन किया गया।

उदयपुर ज़िले में 15फी सदी आबादी शहरी है, बाकी ग्रामीण। चारों ओर पहाड़ी इलाका है। स्त्री शिक्षा की दर 11फी सदी है। सिर्फ 20फी सदी गांवों तक पक्की सड़कें हैं। 21फी सदी गांव रेल या बस से जुड़े हैं। 70फी सदी गांवों में बिजली नहीं है। कुल 6 अस्पताल, 69 डिस्पेंसरियां और 19 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र हैं। 18 परिवार नियोजन केन्द्र हैं। ज़्यादातर जच्चाओं को इसी अस्पताल में लाया जाता है जहां यह अध्ययन किया गया।

अधिकतर केसों में पौष्टिक भोजन न मिलने के कारण खून की कमी थी। तरंतु खून न दे सकने के कारण मौतें होती हैं। देरी का कारण ज़्यादातर केसों में साथ आए रिश्तेदारों का खून देने के लिए तैयार न होना था। खून देने के नाम से वे भाग खड़े होते थे।

बच्चे के जन्म से पहले देखभाल

आम धारणा है कि बच्चा जनना प्राकृतिक क्रिया है। इसमें डाक्टरी सहायता और देखभाल जरूरी नहीं है। गर्भ की शुरुआत से मां की देखभाल की जरूरत है, यह बात उनके दिमाग में घुसती ही नहीं। ऐसा सिर्फ अशिक्षा या स्वास्थ्य केन्द्रों की कमी के कारण नहीं है। अधिकतर स्वास्थ्य केन्द्रों में इस पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया जाता। जब तक डाक्टर और स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता इसके महत्व को बार-बार बताएंगे नहीं, लोग इसे समझेंगे नहीं।

अस्पताल पहुंचने में मरीजों को औसतन तीन घंटे लगते थे। सिर्फ तीन केसों में अस्पताल की एंबुलेंस मिल पाई। तीन केसों में खदानों की डिस्पेंसरी वाली एंबुलेंस मिली। 37फी सदी औरतें प्राइवेट जीप से, 25फी सदी आटो-रिक्शा से अस्पताल आईं या बस स्टॉप तक। 26फी सदी औरतों को भीड़ भरी बस से आना पड़ा। 60 फी सदी केसों में बैलगाड़ी का प्रयोग किया गया। 12 फी सदी ट्रक से आईं।

अस्पताल और प्राथमिक केन्द्रों के पास जीप या एंबुलेंस होने के बावजूद जच्चाओं को एंबुलेंस नहीं मिल सकीं। लालफीताशाही के कारण पैट्रोल पर चैक रखा जाता है। यह भी भुला दिया जाता है कि जीवन-मृत्यु का सवाल है।

जो औरतें अस्पताल में भर्ती होने के दो घंटे के अंदर मर गईं उनके लिए कुछ भी कर पाना असंभव था। 72फी सदी मौतें 24 घंटों के अंदर हुईं। उनमें कुछ भी कर पाना संभव नहीं था। अस्पताल में पूरे समय जांच-पड़ताल की सुविधा नहीं थी। ज़्यादा केस आने से सुविधाएं कम होती जा रही हैं। राजस्थान में एक लाख प्रजननों में 700-800 जच्चा मर जाती हैं। जनाना अस्पताल में यह संख्या 900 रिकार्ड की गई। देश के अन्य भागों के औसत से यह दो गुना है।

□

मुन्नी के झुलना गीत

चंद्रपुर (महाराष्ट्र) से बहन सुमन ने लड़की के नामकरण के दिन गाए जाने वाले दो गीत भेजे हैं। वह लिखती हैं कि लड़की के जन्म पर बारहवें दिन औरतें मिल कर यह गीत गाती हैं, गरभा नाच नाचती हैं और मुन्नी को झुलना झुलाती हैं।

आओ सखी ओ प्यारी सखी ओ
आओ मुन्नी का झुलना झुलाने
चलो नाम रखो सब मिलजुल कर
चलो गीत गाते झुलना झुलाकर
खिलौने मुन्नी को देंगे
देंगे खेलने को
चलो सखी झुलना झुलाने।

ग्यारह घर से ग्यारह सखियां निकलें
आओ सब मिलजुल कर गुलाल खेलें
खेल गरभा का खेलें नाचेंगे झूमकर
नाचेंगे गाएंगे खुशियां मनाने को
खुशियां मनाने को
चलो सखी झुलना झुलाने।

(2)

साल 1990 में हुई लड़की हमारे घर
हमारे घर की पुण्याई बड़ी
लड़की हुई है प्यारी दुलारी
झुलना रे मुन्नी झूल।

बड़ी होकर तू सबला बनेगी
नहीं कोई अबला नारी रहेगी
खुद भी पढ़ेगी
औरों को पढ़ाएगी
मां का नाम रोशन करेगी।

अन्याय न सहने की कसम तू लेगी
अन्यायियों को सबक सिखाएगी
नहीं घर बैठे रोती रहेगी
हर मसले पर सोच-विचार करेगी
झुलना रे मुन्नी झूल।

बड़ी हो कर तू डाक्टर बनेगी
नहीं बन सकी तो सिस्टर बनेगी
महिला समस्या पर विचार करेगी
खुद को संवार कर
देश संवारेगी
झुलना रे मुन्नी झूल।

लड़की ने ज्यादा नहीं घूमना-फिरना
लड़की ने दूसरों की मर्ज़ी से पढ़ना
लड़की ने खुद को बांधकर रखना
लड़की ने सबको खिलाकर खाना
लड़की ने घूंघट डाल कर रहना
ऐसी गलत परंपराएं तोड़ तू देगी
अपने को हिम्मती बनाएगी
झुलना रे मुन्नी झूल।

सुमन कोलंगटीबार
चंद्रपुर

लाडो को सीख

अठारह साल से पहले लाडो शादी न करवाना
बीस साल के पहले लाडो मां नहीं बन जाना
जब हो जाएं पांव तुम्हारे भारी
छटे-सातवें महीने करना टीकों की तैयारी
स्वास्थ्य केन्द्र जाकर तुम टीके मुफ़्त लगवाना
अपना और बच्चों का जीवन तुमको है बचाना

भोजन में सब चीज़ें खाना
हरी सब्जी और भात बनाना
कभी अंकुरित दालें खाना
नियमित पीना छाछ दूध तुम
इन सबको भूल न जाना

यदि हो जाए बिटिया रानी
मन में भेद न लाना
बेटा जान पालना उसको
बहुत ही खुशियां मनाना

यही सीख इस युग की बहना
इसको भूल न जाना।

नीरजा सिंह

□

ज़माना बदल गया

चंदा के एक के बाद एक चार बेटियां हुईं। बेटा न जनने के कारण उसे सास के ताने सुनने पड़ते। अपनी देवरानी के बेटे का लाड़ देखकर उसे बुरा तो नहीं लगता था। पर उसका मन करता था उसकी बेटियों का भी वैसे ही लाड़-प्यार हो। सास के तानों के डर से वह चाहते हुए भी ज़्यादा कुछ नहीं कर पाती थी। बड़ी बेटी कृष्णा बुद्धिमान भी थी और चंदा को बहुत प्यारी भी थी। वह उसे बेटे के समान पढ़ाना लिखाना चाहती थी।

चंदा की छोटी बेटी कुछ कमज़ोर पैदा हुई थी। विशेष ध्यान न देने के कारण दिन पर दिन और सूखती गई और भगवान को प्यारी हो गई। चंदा के मन में बड़ा डर बैठ गया। शायद सास के कोसने के कारण ही ऐसा हुआ। उसने कृष्णा को अपने भाई के पास भेज दिया। वह वहीं रह कर पढ़ी-लिखी, बड़ी हुई।

साल पर साल बीतते गए। चंदा की सास बूढ़ी हो गई। वह काफी बीमार भी रहने लगी। एक दिन चंदा ज़बरन सास को डाक्टरनी के पास दिखाने ले गई। कुछ दिनों से वह डाक्टरनी इसी शहर में आ गई थी और सभी उसका गुणगान करते थे। बुढ़िया बार-बार डाक्टरनी का मुंह देखती। जब उससे न रहा गया तो हिम्मत करके बोली, "बेटी, तुझे देखकर बड़ी ममता लगती है। मेरी बेटी कृष्णा भी बिलकुल तुम्हारी तरह थी। अब वह इतनी ही बड़ी हो गई होगी।"

डाक्टरनी ने मुस्करा कर कहा—"देख कर क्या करोगी दादी। अगर सचमुच ममता होती तो क्या इतने बरस बिना देखे रह सकती थीं। बेटी तो भार होती है।"

बुढ़िया ठंडी सांस भर कर बोली—"हां, बेटी तो भार होती है, पर ममता तो हमारे दिल में उनके लिए भी होती है। पर मेरी बेटी के ऐसे भाग्य कहां? वह तुम्हारी तरह डाक्टरनी तो नहीं बन सकती।"

डाक्टरनी ने कहा, "क्यों नहीं बन सकती। अगर तुम उसे भी बेटे के समान पढ़ाओ-लिखाओ तो वह भी बेटे जैसी बन सकती है।"

बुढ़िया—"नहीं बेटी, पुरखों के ज़माने से ऐसा ही होता आया है। बेटी को पढ़ाने, नौकरी कराने से नाक कट जाएगी।"

डाक्टरनी—"दादी, तुम कैसी बातें करती हो। गुण सीखने से कहीं नाक कटती है। गरीब, बीमार लोगों की सेवा करना क्या पाप है?"

बुढ़िया का गला भर आया—"नहीं बेटी, ऐसा मत बोलो। सारा गांव तुम्हें देवी कहता है। मैंने सदा बेटी-बेटे में भेद किया। मेरी बेटी कृष्णा भी आज डाक्टरनी बन सकती थी। अब लगता है मैं उसे बिना देखे ही मर जाऊंगी।"

डाक्टरनी—"नहीं दादी, ऐसा मत कहो। अगर तुम्हारी कृष्णा ही तुम्हें बचा ले तो?"

दादी आंखे फाड़ कर उसे देख रही थी। हे भगवान, यह कैसा सपना है? कृष्णा प्यार से दादी से लिपट गई। दादी की आंखों से आंसू बहने लगे।

कृष्णा ने कहा—"दादी, तुम्हें तो खुश होना चाहिए। तुम रो क्यों रही हो?"

दादी ने कहा—"बेटी, यह पछतावे के आंसू हैं और खुशी के भी। मेरी ही आंखों के सामने ज़माना कितना बदल गया। मैं देख रही हूं बेटी भी वही सब कुछ कर सकती है जो बेटा करता है।" दादी का गला रुंध गया और वह आगे बोल नहीं सकीं।

साभार—शकुंतला सरन, साक्षरता निकेतन, लखनऊ

जाग बहना जाग

जाग बहना जाग जागने का समय आया है
नारी जहां पिछड़ी रहे पिछड़ा ही तो समाज है

ज्ञान रूप नारी है सरस्वती के रूप में
धन धान्य आए नारी से महा लक्ष्मी के रूप में
नारी ही रूप शक्ति दुर्गा मां की जय जय आज है।

ज्ञान रूप होके तूने ज्ञान क्यों भुला दिया
लक्ष्मी रूप होके लक्ष्मी लाना क्यों बुरा कहा
क्यों सबला शक्ति होके भी अबला कहलाती आज है
जाग बहना जाग जागने का समय आज है।

किरण बडेरा
एकार्ड, नई दिल्ली

गलत धारणाएं तोड़ें

यदि महिलाएं हल को हाथ लगाएं तो अपशकुन क्यों माना जाता है? सरकाघाट, हिमाचल प्रदेश में एक शिविर के दौरान हुई बातचीत—

एक महिला ने कहा—यदि महिलाएं हल को हाथ लगाएं तो पति की उम्र कम हो जाती है। दूसरी महिला बोली—सरकार की यह नीति है कि जो हल चलाएगा और खेत में काम करेगा ज़मीन उसकी होगी। इसलिए हमें अंध-विश्वासों का सहारा लेकर पति की इज़्ज़त का वास्ता देकर हल नहीं चलाने दिया जाता है। अगर हम हल चलाने लगेंगी तो जमीन पर हमारा हक़ भी बनेगा।

तीसरी ने कहा—हल चलाना भारी काम है जिससे महिलाओं की बच्चे-दानी में गलत असर हो सकता है। लड़का न पैदा करने पर औरत को कोसा जाता है।

चौथी ने कहा—औरतें भारी काम न करें, यह कह कर उनकी शक्ति को कम दिखाने की कोशिश मर्द बराबर करते हैं।

महिलाओं ने उदाहरण के लिए बताया—गीता देवी के पति ने तीन विवाह किए क्योंकि पहली दो पत्नियां लड़का नहीं दे सकीं। जायदाद तो बेटे को ही जानी है न। उनका कहना था हम दिन-रात मेहनत करके फसल उगाती हैं, फिर भी ज़मीन पर हमारा एक फी सदी भी हक़ नहीं है। हमारी मेहनत की कोई कीमत नहीं है।

गांव खरोह की गीता देवी ने कहा कि हमारे गांव की एक महिला ने हल चलाया था। उसकी बुराई की जाती है कि उसने नियम तोड़ा था।

साभार—हिम-महिला समाचार पत्रिका

चिड़िया की बेबसी

चिड़िया चाहे पूरब की हो
या पश्चिम की
फड़कती है चोट खाने पर
औरत कहीं भी लुटे
दर्द एक सा भोगती है।
लूट ली जाती है
कोई फर्क नहीं होता तब
चिड़िया और औरत में।

चिड़िया घोंसले में
पहुंचने से पहले
जंगल के इतिहास में
गिद्धों की कोख में
दफन हो जाती है

पगडंडियों, राजमार्गों पर
भागती, चिल्लाती, पुकारती
ज़माने के हाथों
नोच खसोट ली जाती है
तब हर औरत
एक बेबस चिड़िया बन जाती है।

मगर इसमें कोई शक नहीं
दर्द का एक ही रंग
दुनिया के भूगोल पर उगलती है
हर लुटी हुई औरत
हर नुची हुई चिड़िया।

शारदा बहन
एक्शन इंडिया

लड़की लड़का एक समान

मानो हमारी बात जहान
लड़की लड़का एक समान
लाड प्यार से बेटी पालें
पढ़ना लिखना उसे सिखालें
वो भी कर ले काम महान
लड़की लड़का एक समान

कमला भसीन

जब उसकी भोजन बनाने की कला काम आई

जब सुबह सड़क के किनारे परांठों की सोंधी महक फैलती है तो आस पास सभी जान जाते हैं कि मालती ने अपनी दूकान खोल दी है। सुबह अपने दोनों बच्चों को स्कूल भेजकर मालती ढेर सा आटा गूंधने बैठ जाती है। मुंह अंधेरे ही उसका काम शुरू हो जाता है। 8 बजे तक लगभग 100 परांठे बेल कर उन्हें आधा पका कर रख चुकी होती है। मालती कभी अपने परांठे गिनती नहीं है। उसे लगता है गिनती करेगी तो वह बिकेंगे नहीं।

मालती बहुत कम उम्र में विधवा हो गई थी। उसके दोनों बच्चे बहुत छोटे थे। उसके ससुराल वालों ने उसे उसी घर में रहने दिया। कुछ साल ठीकठाक चलता रहा। जब बच्चे स्कूल जाने लायक हुए तो मालती उन्हें पढ़ाना चाहती थी। उसके जेठ का ख्याल था उन्हें काम पर भेजना चाहिए। तब मालती को अपनी लाचारी का अहसास हुआ। उसे लगा कि वह खुद दूसरों के आसरे रहेगी तो अपने बच्चों की जिंदगी कैसे बना सकेगी।

मालती घर से बाहर ही नहीं निकली थी। फिर भी ज़बरन वह मन कड़ा करके काम ढूंढने निकली। उसे थोड़ा-बहुत ही पढ़ना-लिखना आता था। उसे कोई नौकरी नहीं मिल सकी। वह मज़दूरी भी नहीं कर सकती थी क्योंकि परिवार की इज्ज़त का सवाल था। वह पति के घरवालों से झगड़ा नहीं करना चाहती थी। उनके साथ मेलजोल से रहना चाहती थी। पति की मौत के बाद उन्होंने उसे सिर ढांकने को छत दी थी। खाना कपड़ा दिया था।

एक दिन मालती ने सड़क पर एक आदमी को रोटियां बेचते देखा। मालती को दिशा मिल गई। वह खाना पहले से ही अच्छा बना लेती थी। अपने जेठ से आज्ञा लेने के बाद उसने जगह खोजी। उसे घर के पास के बाज़ार में एक खाली कोना मिल गया। फिर उसके परांठे के धंधे को चल निकलने में समय नहीं लगा। शुरू में उसे थोड़ी शर्म लगती थी क्योंकि उस बाज़ार में कोई भी औरत सामान नहीं बेचती थी। धीरे-धीरे वह हिचक भी चली गई। उसे कभी किसी ने परेशान नहीं किया। पुलिस वालों ने भी उसे कभी उसकी जगह से नहीं हटाया। वह कभी-कभी उन्हें मुफ्त परांठे खिला देती है।

उसकी दुकान काफी चलने लगी तो उसने परांठे के साथ चने भी बेचना शुरू कर दिया। जाड़े में चने के साथ सब्जी भी बेचती है। उसके बच्चे अच्छे स्कूल में पढ़ने जाते हैं। वह बहुत मेहनत से पढ़ रहे हैं। मालती कहती है उसे विश्वास है कि उन्हें अच्छी नौकरी मिल जाएगी। उसका पति होता तो उसे अपने बच्चों पर गर्व होता।

गर्व तो उसे मालती पर भी होता जिसने अपनी मेहनत और सूझ-बूझ से अपना और बच्चों का जीवन बनाया।

□

मेरी कहानी

वह जन्मी भारत देश में
जहां बेटी के जन्म पर
छा जाता है एक सन्नाटा
उसका जीवन खत्म करना
है एक मामूली सी बात
बनाकर उसे खुद अपंग
मानते हैं उसे एक बोझ
हंसना दूर, रोना शुरू करने के पहले
चाहते हैं उस जीवन का अंत

है जीवन बड़ा बली
बच जाती है फिर भी
पलती अभावों के बीच
नियति उसकी मां का हाथ बंटाना
भाई खेलता कूदता, पढ़ता लिखता
उसे बहुत कुछ सीखकर
परिवार का पोषण है करना ?
मां बाप की बैसाखी है बनना !

हम देखते बड़े मान से
बेटा सब साधनों से लैस
बलवान, ज़िंदगी का सामना करने को तैयार
बेटी तो पराया धन है
है गर वह कुछ पढ़ी लिखी, सुंदर
है काफी उसके लिए
संग में दहेज है तैयार
कर दिया उसे जीवन संग्राम के लिए तैयार

अब शुरू होता है एक नया जीवन
छोड़कर वह अपनी जड़ें
जा पहुंचती है अनजानी डगर
पत्नी से पहले, घर की बहू
शायद कल तक थी वह नादान बच्ची
आज परिवार का बोझ संभाले
दुःख दर्दों को भाग्य समझकर जोती
देती है नये जीव को जन्म

है आने को नई पीढ़ी
जगती है नई आशा
बेटी पाकर नए मौके, निखरती
निकलती बेटे से बढ़कर होशियार
करती है वह बहस और
करती है मनमानी
सदियों के बंधनों को
तोड़ फेंकना चाहती है
क्रोध का तेज़ है मुख पर
मज़बूत, नहीं किसी से कम
वह है हमारी बेटी
भारत देश की बेटी ।

सुश्री सरिता शर्मा की अंग्रेजी कविता
'माई एन्थेम' से प्रेरित

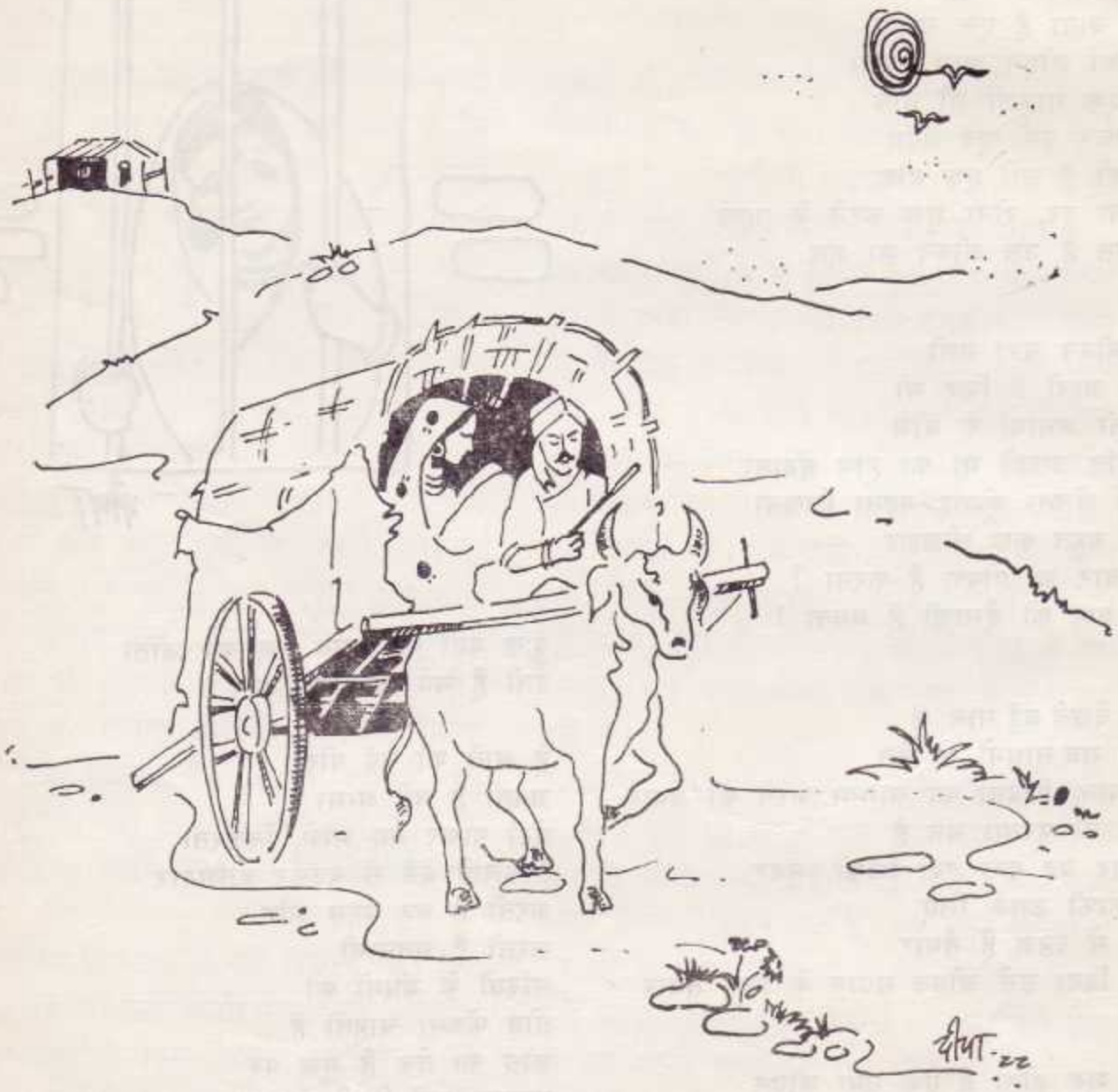

जिंदगी का एक घिनोना रूप

संतोष बजाज

हमारे देश के बड़े शहरों में आसमान को छूने की कोशिश करती ऊंची-ऊंची इमारतें होती हैं। उन्हीं ऊंची इमारतों के साए में बसी घनी बस्तियां होती हैं जो 'झोंपड़पट्टी' या 'स्लम' के नाम से जानी जाती हैं।

दिल्ली शहर में भी लाखों लोग ऐसी झोंपड़ियों की बस्तियों में रहते हैं। पश्चिमी दिल्ली में शादीपुर डिपो के पास रेल की लाइन के साथ पांडव नगर की बस्ती में झोंपड़ियों की पूरी दुनिया बसी है। शायद बंबई के धारवार के बाद यह दूसरे नंबर पर बड़ी झोंपड़पट्टी है। इसमें न जाने कहां-कहां से आकर अनगिनत लोग बस गए हैं। यदि पुल के ऊपर खड़े होकर देखें तो इस बस्ती की झोंपड़ियों को गिनना भी मुश्किल है। दीवार से सटी दीवारों के आठ-नौ फुट के चौकोर टुकड़ों को टीन-टप्पर, बांस, गारा और टूटी-फूटी सीमेंट की चादर या प्लास्टिक की बड़ी शीट से ढकी छतों वाली झोपड़ियां अपने में पूरे आठ-आठ दस-दस जनों के परिवारों को समेटे हैं। चाहे दरियागंज हो या त्रिलोक पुरी, कालका जी या नारायणा, रघुवीर नगर, ख्याला हो, हरिनगर या पटेल नगर, कोई भी कालोनी ले लें। उसके तीन चार किलोमीटर के दायरे में एक न एक झोंपड़पट्टी मिल जाएगी, छोटी या बड़ी।

किसी एक बस्ती को देख लेने से मानों सारी झोंपड़ियों की हालत सामने आ जाती है। हर झुग्गी में कम से कम चार और ज्यादा से ज्यादा दस आदमी रहते हैं। कोई खिड़की या रोशनदान नहीं। बस, अंदर आने-जाने के लिए एक दर्वाज़ा होता है, जिस पर किवाड़ नहीं। उसी में खाना बनाया जाता है। दिन में बैठा जाता है। धूप, आंधी-पानी से बचने के लिए और उसी में जमीन पर रात को पूरा परिवार सो जाता है।

गांवों से भागकर आए परिवार शहरी झोपड़पट्टियों में रहते हैं। यहां न खुली धूप है, न हवा, चारों ओर घिनकी आबादी, गंदगी और सीलन। गांवों का खुला आकाश, दिन में सूरज, रात में चांद और तारे इन झोंपड़पट्टियों में रहने वालों को नसीब नहीं। लेकिन रोजगार, यही बड़ा सवाल है।

शराब, मार-पीट

इन झोंपड़ियों में रहने वाले भीख मांग कर भी पेट पालते हैं और मेहनत मजदूरी करने वाले भी हैं। औरतें आसपास की कालोनी के घरों में घरेलू काम करती हैं। पुरुष पुताई, रंगाई, मजदूरी या मूढ़े बनाने का काम करते हैं या पुराने कपड़ों की मरम्मत करा कर उन्हें बेचते हैं। जो पैसा मिलता है उसमें से थोड़ा घर चलाने के लिए दे देते हैं। ज्यादा की शराब पी जाते हैं। शराब पीकर गाली-गलौज, दंगा-फसाद करते हैं या अपनी औरतों को पीटते हैं। औरतें बकझक करती हैं कि खाने को है नहीं और तुम शराब पीकर पैसा फूंक आए हो। यह ताना सुनकर पति को अपने जन्मसिद्ध अधिकार (पत्नी को पीटने) की सहज याद आ जाती है और वह पीटने लगता है। इन्हीं तंग झोंपड़ियों में सोए बच्चे अपने मां-बाप के हर तरह के संबंधों को अपनी अधकचरी उमर में अपनी आंखों देखते हैं। छोटे बच्चे को बड़ा भाई या बहन संभालती है, या वे स्वयं रेंग-रेंग कर बड़े हो जाते हैं। मां-बाप परिवार में बच्चों की गिनती जोड़ते चले जाते हैं।

ये लोग अलग-अलग जातियों के हैं और दूर-दूर से आकर यहां बस गए हैं। एक, उत्तर प्रदेश के छोटे

शहरों से आने वाले लोग। दूसरे, दक्षिण भारत से आए लोग।

तीसरे, जो अहमदाबाद बड़ौदा की ओर से आए हैं। इनकी सबसे पहली बस्ती शंकर रोड पर थी। इनकी विशेषता यह है कि इनकी औरतों का पहनावा राजस्थानियों जैसा होता है। लहंगा, चुनरी और गले में हंसली, पैरों में कड़े। इनकी बस्तियां हैं करौलबाग के पास रैगड़पुरा में। इनकी भाषा गुजराती है और खान-पान राजस्थानी, सिंधी व गुजराती तीनों का मिश्रण है। इनके पुरुष पुराने कपड़ों की मरम्मत कर उन्हें बाजारों में हाट लगा कर बेचते हैं। औरतें ज्यादातर स्टील के बर्तनों के बदले में पुराने कपड़े लेती हैं। उन्हीं की सिलाई मरम्मत करके इनके भाई, बेटे या पति बाजार में बेचते हैं। इन्हें रिक्शा वाले या मजदूर या सफेदी व रंग रोगन करने वाले कारीगर सस्ते दामों में खरीद लेते हैं।

नर्क की जिंदगी

झोंपड़ियों के आसपास का वातावरण बेहद खराब रहता है। सफाई के नाम पर कुछ नहीं होता। पानी का कोई प्रबंध नहीं। सड़क के खंभों से मिलने वाली रोशनी के सहारे जीते हैं। चारों ओर दिन भर मक्खियां भिनभिनाती हैं। शाम होते ही मच्छरों का हमला हो जाता है। गंदे नालों के किनारे बसी झोंपड़पट्टियों का यह हाल है कि वहां रहने वाले पक्के मकानों के लोग भी बदबू से परेशान हैं। झोंपड़ियों में रहने वालों को तो रहना भी यहीं है, पकाना भी यहीं और खाना भी यहीं। उन्हें मच्छर-मक्खी, बदबू व अंधेरा सबकी आदत पड़ गई है।

बस्ती में शौच के लिए कोई उचित बंदोबस्त नहीं होता। लोग जंगलपानी के पुराने रिवाज पर जी रहे हैं जिससे गंदगी और बदबू दिन-दिन बढ़ रही है। हर तरह की बीमारी यहां है। इन बस्तियों में कुछ निवासियों को बरसों से तपेदिक है। लगभग हर तीसरे घर में एक रोगी मिल जाता है।

पूछताछ करने पर पता चला कि बच्चों को पोलियो या बी.सी.जी. के टीके लगवाने की जरूरत ही नहीं समझी जाती। यह पूछने पर कि टीके क्यों नहीं लगवाते, कुछ लोगों के पास तो जवाब ही नहीं है। यदि जवाब मिलता है तो ऐसा कि सुन कर दया आती है उनकी नासमझी पर। एक स्त्री ने बताया कि लड़कों को तो टीके लगवा दिए हैं, पर लड़कियों को नहीं। सरकारी स्कूल में लड़कों को तो पढ़ने भेज दिया जाता है, लड़कियों को कैसे भेज सकते हैं? उनका उत्तर उनकी दृष्टि से ठीक लगता है। उनका कहना है कि लड़कियां या तो हमारे साथ काम पर जाती हैं या घर में रह कर वे छोटे भाई-बहनों को संभालती हैं। रोटी बनाती हैं। हम जब थक कर

चंदा का शोषण

इस इलाके की कुछ लड़कियों से मैंने बात की। इनमें से एक है चंदा और दूसरी फूलो। चंदा से इस तरह बात हुई :

मैं—तुम्हारी कितनी उम्र है?
चंदा—चौदह साल।
मैं—स्कूल जाती हो?
चंदा—मौसी नहीं भेजती।
मैं—मौसी कौन? तुम्हारी मां कहां है?

चंदा—मेरी मां गांव में है। मैं मौसी के पास रहती हूं। मेरे पिता नहीं हैं। हम चार बहनें हैं। मौसी पहले बड़ी बहन को अपने साथ लाई थी। दो साल बाद उसे शादी के लिए गांव मां के पास भेज दिया और मेरी दूसरे नंबर की बहन को ले आई। अब उसे भी तीन साल रख कर मां के पास वापिस भेज दिया और मुझे ले आई। मौसी हम लोगों को वहां से ले आती है। हम यहां सात-आठ घरों में बर्तन झाड़ू का काम कर पैसे कमा कर मौसी को देती हैं। मौसी दो-तीन साल बाद गांव वापिस भेज देती है। बहुत थोड़े पैसे मां को देती है। बाकी अपने पास रखती है। मुझे मौसी के पास रहना जरा भी अच्छा नहीं लगता, लेकिन क्या करूं? घर का खर्च चलाने के लिए यह सहना पड़ता है।

फूलो के सपने

फूलो की बातें कुछ और ही ढंग की हैं। उससे बात कर लगा कि जीवन में उसके भी रंगीन सपने हैं। उससे बातचीत इस तरह हुई :

मैं—कितने साल की हो ?
फूलो—तेरह साल।
मैं—पढ़ती हो ?
फूलो—मां ने पढ़ाई छुड़वा दी।
मैं—क्यों ?
फूलो—मैं चौथी क्लास में दो बार फेल हो गई। मुझे पढ़ना अच्छा नहीं लगता।

मैं—तुम्हें क्या अच्छा लगता है ?
फूलो—(शर्मा कर हंसती हुई) टेलीविजन देखना।
मैं—टेलीविजन कहां देखती हो ?
फूलो—जिनके घरों में हम काम करती हैं वहां रोज देखने चली जाती हैं। कभी-कभी मुहल्ले में दो-दो रुपये चंदा कर सरकारी खंभे से तार खींचकर हम सब झुग्गी वाले किराये का वीडियो मंगा लेते हैं और उस रात को हम तीन फिल्में देखते हैं।

मैं—और क्या अच्छा लगता है ?

फूलो—मैं जब बड़ी होऊंगी तब मेरा पक्का कमरा होगा। उसमें बत्ती होगी, टी.वी. होगा, पंखा होगा, पानी का नल होगा। मैं ऐसे आदमी से शादी नहीं करूंगी जो शराब पीकर मुझे पीटे जैसे हमारी जात के सब लोग करते हैं।

मैं—तुम पढ़ना तो चाहती नहीं, फिर ऐसा लड़का, ऐसा घर तुम्हें कैसे मिलेगा ?

इस सवाल का उत्तर फूलो कैसे दे ? यह तो उसका सपना है और सपने की उड़ान की कोई सीमा नहीं होती।

'सुख वैभव' का घर मिलने के बाद भी फूलो कहती है कि वह काम करेगी। अपने कमाए पैसे हाथ में रहेंगे तो वह मनमर्जी खर्च कर सकेगी।

आती हैं तब घर का काम करने की ताकत नहीं रहती। इसी कारण हम लड़कियों को स्कूल नहीं भेजतीं। वैसे भी पढ़ लिखकर उन्होंने क्या तीर मार लेना है। वे भी हमारी तरह घर-घर काम करके अपना और अपने परिवार का पेट पालेंगी या घर पर रह कर बच्चों को संभालेंगी। लड़के और लड़की के प्रति मां का ही दृष्टिकोण कितना भेदभाव वाला है। कैसी अजीब बात है ?

अस्पताल का लाभ नहीं

सरकारी अस्पताल होते हुए भी इन झोंपड़ियों में रहने वाली औरतें बच्चा होने के समय किसी अस्पताल में नहीं जातीं। वे आस-पड़ोस की औरतों की मदद से ही बच्चे जन्मती हैं। आस-पास की गंदगी के कारण कई तरह की छूत बच्चों और जच्चा को लग जाती है जिससे बीमारियां जीवन भर के लिए घर कर लेती हैं। जहां पानी की कमी है, आसपास कचरे के ढेर हैं और नालियों की गंदगी है, वहां सफाई रख पाना कैसे संभव है ?

इन्हीं कारणों से नवजात शिशुओं की मृत्यु-दर अधिक है। यदि लड़की होती है और मर जाती है तो इन्हें विशेष दुख नहीं होता। कह देती हैं, "अच्छा हुआ, जान छूटी।" यदि लड़का होकर मर जाता है तो कुनबा कुछ देर के लिए दुखी हो उठता है, लेकिन दो जून की रोटी जुटाने में दिन-रात कमर तोड़ते परिवारों में ज्यादा दिन दुख मनाने का समय किसके पास है। यही है इन झोंपड़ियों में बसने वाले हजारों-लाखों लोगों की राम कहानी। □

गांवों की औरतों को संगठित करने के कुछ अनुभव

मंजू देवी

काशी विद्यापीठ खंड के 27 गांवों में ग्रामीण स्वच्छता व स्वास्थ्य शिक्षा परियोजना चल रही है। शुरू में औरतों को संगठित करने में काफी परेशानी उठानी पड़ी।

जिन गांवों में परियोजना चल रही है वहां पुरुष शहरों में मजदूरी करने जाते हैं। औरतें मुख्य रूप से खेतों पर काम करती हैं। कुछ औरतें घरों में बीड़ी बनाती हैं। अनुसूचित जाति व पिछड़ी जाति के लोग ज्यादा हैं।

उत्तर प्रदेश में जाति के आधार पर इतना ज्यादा विभाजन है कि औरतों को संगठित करना समस्या है। उनकी एक साथ बैठक करना मुश्किल है। महिला मंगल दलों का गठन कुछ महीने पहले हो चुका था, पर उनकी अध्यक्षाओं के नामों की जानकारी भी मुश्किल थी।

कुछ ने अध्यक्षा पद रहते हुए कोई भी काम नहीं किया था। उन्हें मालूम ही नहीं था कि क्या करना है। कहीं-कहीं उन्हें यह भी मालूम नहीं था कि वे महिला मंगल दल की अध्यक्षा हैं।

3-4 गांवों में अध्यक्षाएं कार्यक्रम में बड़ा सहयोग दे रही हैं। कुओं की सफाई करा रही हैं। पानी निकास की व्यवस्था व सोखता गड्ढे बनवा रही हैं। पानी पंचायतें संगठित कर रही हैं। घरों में शौचालय की आवश्यकता के बारे में बताती हैं। गंदे पानी से पैदा होने वाली बीमारियों के बारे में बताती हैं। वे अपने को कार्यक्रम का जरूरी हिस्सा समझने लगी हैं।

छोटी जाति की अध्यक्षाएं हम लोगों के साथ जल्दी जुड़ गईं, जबकि ऊंची जाति की अध्यक्षाएं नहीं आ पाईं। एक गांव की एक अध्यक्षा की आंखों में यह बताते आंसू भर आए कि उसके घर के पुरुष उसे घर के बाहर नहीं जाने देंगे। कार्यकर्ताओं के समझाने पर भी पुरुष राजी नहीं हुए।

परियोजना का मुख्य उद्देश्य गांववासियों को पीने का साफ पानी और शौचालय की सुविधा देना है। दोनों समस्याओं से ज्यादा परेशानी औरतों को ही उठानी पड़ती है।

धीरे-धीरे कार्यकर्ताओं ने हर समस्या पर ध्यान देना शुरू किया। समस्या चाहे बीमारी हो या पति से उत्पीड़न, पानी या शौचालय, बच्चों की शिक्षा या रोज़गार आदि। इस तरह औरतें हमारे हर कार्यक्रम में शामिल होने लगी हैं। परियोजना में औरतों को मिस्त्री के काम का प्रशिक्षण दिया गया है। □

दो शिविरों की रपट

जागृति शिविर, सरकाघाट

सरकाघाट (हिमाचल प्रदेश के ज़िला मंडी के गोपालपुर विकास खंड) में 7-11-89 से 11-11-89 तक आयोजित शिविर में औरतों के निजी जीवन की कुछ घटनाएं और अनुभवों पर सवाल-जवाब।

घटनाएं—लज्जा देवी गांव ढढीह में रहती हैं। 20 साल पहले इनके पति की मृत्यु हो गई, जिस कारण घर के काम-काज का सारा बोझ इनके ऊपर आ पड़ा। बच्चों का लालन-पालन तो करना था, पर इन्होंने हिम्मत नहीं हारी। ज़मीन को जोत-बोकर इन्होंने बच्चों को पाला-पोसा और पढ़ा-लिखाकर काबिल बनाया। पर आज इनका बेटा ही इनसे बात तक करने को तैयार नहीं।

जसदेई गांव कुनालग में रहती हैं। इनके पति की मृत्यु बहुत जल्दी हो गई और घर की सारी जिम्मेदारी इन पर आ गई। जसदेई ने अपने बारे में बड़े उत्साह से बताया—"दीदी ! औरत चाहे तो हर काम मुश्किलों से टकराकर भी कर सकती है।"

गीता देवी ने जो गांव खरोह की रहने वाली हैं बताया कि इनके 12 बच्चे हैं और इनके पति अब तक तीन बार शादी कर चुके हैं। क्योंकि पहली पत्नियां लड़का नहीं दे सकीं, सिर्फ जायदाद देखकर इनके मां-बाप ने इनका ब्याह कर दिया था।

गांव कुनालग की ही महाराजू देवी ने बताया कि ब्याह के बाद इनके चार बच्चे हुए और ब्याह के 6 साल बाद इनका पति इन्हें छोड़ गया। पांच-छह साल वे पति का इंतज़ार करती रहीं। इनके मां-बाप ने कुछ सहायता की। किसी तरह उन्होंने बच्चों को पढ़ाया-लिखाया। अचानक 20 साल बाद इनका पति आसाम से दूसरी पत्नी और 3 बच्चों को लेकर आ गया और साथ रहने लगा। धीरे-धीरे उसकी आदतें बिगड़ने लगीं। महाराजू ने हिम्मत कर पति से कहा कि वह अपने परिवार सहित अलग रहे और खुद कमा कर रोटी खाए। वह बेरोज़गार को कब तक रोटी खिलाती रहेगी। अब वह दूसरी पत्नी को छोड़कर उनके पास आना चाहता है और उनके नाम जो ज़मीन है उसमें से हिस्सा भी चाहता है।

ये औरतें जब अपनी ज़िंदगी के बारे में बता रही थीं तब अन्य औरतों में अजीब शांति थी, क्योंकि सबके दुःख-दर्द मिलते-जुलते थे।

कुछ सवाल-जवाब

यदि औरतें हल को हाथ लगाएं तो अपशकुन क्यों माना जाता है ?

जवाब मिला कि कहते हैं यदि औरत हल को हाथ लगाए तो उसके पति की उम्र घट जाती है। साथ ही उन्होंने कहा यह डर भी है कि यदि औरतें हल चलाने लगेंगी तो सरकारी नीति के अनुसार ज़मीन पर उनका अधिकार न हो जाए। वैसे हल चलाना भारी काम है जिससे औरतों की बच्चेदानी को नुकसान पहुंच सकता है।

औरतें भारी काम नहीं कर सकतीं, यह कहकर उन्हें कमज़ोर बनाने की कोशिश मर्द करते रहते हैं। औरतों ने कहा—"हम दिन-रात खेतों में मेहनत करती हैं, पर ज़मीन पर हमारा एक फी सदी अधिकार भी नहीं है। हमारी मेहनत की कोई कीमत नहीं है।"

गांव खरोह की गीता देवी ने बताया कि उनके गांव की एक औरत ने हल चलाया तो पूरे गांव में यह चर्चा है कि उसने समाज का नियम तोड़ा। कोई उसकी तारीफ नहीं करता है।

निर्मला की कहानी

निर्मला सुजानपुर-टीहरा (हिमाचल प्रदेश) की रहने वाली हैं। 28 नवंबर 1989 को उनका ब्याह कांगड़ा के महेंद्रकुमार के साथ हुआ।

(शेष पृष्ठ 35 पर)

(पृष्ठ 33 का शेष)

शादी के एक हफ्ते बाद ही उसका पति उसे जयपुरसिंह के शीतला मंदिर ले गया, जहां उसने प्रार्थना की कि "शीतला माता ! आज मुझे बहुत गुस्सा आ रहा है। मैं अपनी पत्नी को बहुत मारूंगा, लेकिन तू मेरे इस गुस्से को माफ़ कर देना।"
निर्मला ने समझा कि पति मज़ाक कर रहा है पर घर लौटते ही महेंद्र ने पत्नी को जूते से पीटना शुरू कर दिया। बीच-बीच में थप्पड़ भी मारे।

निर्मला बेहोश हो गई। जब उसे होश आया तब सास और ननद उसके सिर को सहलाते हुए कहने लगीं कि मारपीट की बात घर से बाहर नहीं जानी चाहिए। इसलिए वह चुप रही।

महेंद्र बार-बार यह धमकी देता था कि "तूने ज्यादा बकबक करने की कोशिश की तो तुझे किन्नौर ले जाकर कमरे में बंद कर जान से मार दूंगा और तेरी लाश को सतलुज में बहा दूंगा।"
निर्मला अब अपने मां-बाप के साथ रहती है। □

'समुदाय' : समस्तीपुर का शिक्षा शिविर

यह शिविर 'समुदाय' के आंगन में जहां उसका केंद्र है आयोजित किया गया। केले के बाग में कनात और पंडाल तानकर हाल बनाए गए।
एक हाल में ट्रेनिंग कक्षाएं और चर्चा की बैठकें हुईं। भाग लेने वालों की संख्या 117 थी, 18 पुरुष और 99 स्त्रियां जो 17 समुदायों से आए थे।
हर समुदाय में एक-दो व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्र में स्वास्थ्य कार्यक्रम संगठित करने योग्य थे।

बातचीत के विषय थे—

1. गांव में होने वाले सामान्य रोग।
2. मां और बच्चे की देखभाल और इलाज।
3. दांतों की देखभाल—बीमारियां, कारण और रोकथाम।
4. आंखों में होने वाले सामान्य रोग—उनके कारण, देखभाल और इलाज।
5. कुष्ठ रोग—रोग के लक्षण और इलाज।
6. तपेदिक—रोग के लक्षण और इलाज।
7. स्वास्थ्य-सेवा की राजनीति।
8. मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण।
9. स्वास्थ्य कार्य के जरिये स्त्रियों को संगठित करना।
10. 'समुदाय' के चार्टों का अनपढ़ हरिजन औरतों को समझाने के लिए इस्तेमाल।
11. स्त्रियों के रोग और उनका सामाजिक रीति-रिवाजों से संबंध।
12. स्त्रियों से संबंधित समस्याएं।
13. स्त्रियों को संगठित करते समय उठने वाली बाधाएं।
14. शिविर की समाप्ति के बाद की रपट।
15. व्यावहारिक जीवन में प्रार्थना और नैतिकता का महत्व।

इनमें से कुछ मुद्दों पर समय की कमी के कारण विचार नहीं किया जा सका, पर खास बात यह थी कि भाग लेने वाले खुले ढंग से अपनी बात कह रहे थे और अपने-अपने क्षेत्र में इस तरह के कार्यक्रम अपनाने को तैयार थे। विषयों को समझाने के लिए चार्ट, पोस्टर और माडलों का उपयोग किया गया। स्लाइड भी दिखाई गईं। वीडियो कैसेट से स्वास्थ्य-संबंधी विषय समझाए गए।
स्वास्थ्य कार्यकर्ती अशिक्षित थीं, पर वे अपने अर्जित ज्ञान को अच्छे ढंग से समझा रही थीं। वे शिविर में प्रेरणा का स्रोत रहीं।

डाक्टर शैलजा देशपांडे, डाक्टर अरुंधती भावे और डाक्टर एस. वी. शास्त्री ने शिविर में भाग लेने वालों के लिए दो घंटे का विशेष क्लीनिक चलाया।

शाम का समय खेलों के लिए था। हालांकि इन बहनों ने पहले कभी खेल-कूद में भाग नहीं लिया था, पर आश्चर्यजनक योग्यता और क्षमता दिखाई। बड़ी उम्र की औरतों ने भी बहुत रुचि ली। चार बच्चों की एक मां ने 'खो-खो' खेलने में इतनी फुर्ती दिखाई कि सबका ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। खेलों का व्यक्ति के विकास में महत्वपूर्ण स्थान है।

शिविर का उद्देश्य

स्त्रियों को स्वास्थ्य कार्यकर्ती की ट्रेनिंग

विभिन्न संगठनों द्वारा स्वास्थ्य कार्यक्रमों को अपने कार्यक्रम में शामिल करना।

समुदाय के स्वास्थ्य कार्यक्रम का मूल्यांकन। किसी सीमा तक इसे और बढ़ाया जाए और नये दृष्टिकोण शामिल किए जाएं।

श्री शुभ मूर्ति ने बताया कि यह बात सर्वमान्य है कि रोगों की रोकथाम इलाज से अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए स्वास्थ्य कार्यकर्ता की भूमिका डाक्टर से अधिक महत्वपूर्ण है। यहां यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि स्वास्थ्य कार्यकर्ता की कुशलता से ज्यादा उसका संवेदनशील होना जरूरी है। उसे अपनी जानकारी पर भरोसा होने के साथ अपनी सीमाओं के बारे में भी जागरूक रहना चाहिए। यदि वह अपनी सीमाओं को ध्यान में नहीं

रखेगी तो अनेक डाक्टरों की तरह वह गलत सलाह देकर नुकसान भी पहुंचा सकती है।

शिविर में भाग लेने वालों ने बच्चों की देखभाल और औरतों के शरीर और उसमें होने वाली बीमारियों में खास रुचि दिखाई। आंखों से ज्यादा दांतों की देखभाल में रुचि दिखाई।

कुष्ठ रोग में काफी रुचि दिखाई दी। डाक्टर एस. वी. शास्त्री का कहना था कि यह सामाजिक बीमारी है और समाज को जागरूक बनाने से इसे खत्म किया जा सकता है।

पर्यावरण की चर्चा नया विषय था और उसमें विशेष रुचि दिखाई दी। प्रकृति और अन्य प्राणियों की एक दूसरे पर निर्भरता मिसालें देकर समझाई गईं। मिसालें उनके जीवन से संबंधित थीं। जिस कारण विषय आसान होने के अलावा रुचिपूर्ण बन गया।

शिविर सुचारु रूप से चले, इसके लिए ज़िम्मेदारियां बांटी गईं। कुछ का काम शिविरार्थियों को जगाना था जिसे वे सीटी बजाकर या गाना गाकर करती थीं। एक पुरुष सहभागी को बच्चों की देखभाल का जिम्मा सौंपा गया। यह देखकर बहुत अच्छा लगा कि वह न केवल यह काम बहुत अच्छे ढंग से कर रहा था, बल्कि खूब रुचि के साथ भी कर रहा था। बच्चों को दूध देना, दवा देना, उन्हें बहलाना, उनके साथ खेलना आदि उसके काम थे। जिम्मेदारियों के बारे में फैसले सामूहिक रूप से किए गए थे।

शिविर की गतिविधियों से सब संतुष्ट थे तथा उसे आगे चलाने के लिए तैयार थे। खुला स्त्री समाज— कल्पना और प्रतिभा अश्तिकार की बातें काफी रुचिपूर्ण थीं। दोनों महाराष्ट्र की थीं। उन्होंने बताया कि औरतों की समस्याएं एक सी हैं, हालांकि उनके जीवन में काफी अंतर है। महाराष्ट्र में स्त्री समाज काफी खुला है। यह बदलाव बहुत सामाजिक कोशिशों से आया है। बिहार में भी यह बदलाव लाया जा सकता है।

हर दिन शाम को दिन भर के कार्यक्रम का मूल्यांकन किया जाता था। शिविर की गतिविधियों की आलोचना, समस्याएं और उनके समाधान पर चर्चा की जाती थी। स्त्रियों ने इन सबमें बड़े खुले ढंग से भाग लिया। जिन समूहों ने ठीक ढंग से स्वास्थ्य कार्यक्रम को समझ लिया था समुदाय की ओर से उन्हें दवाओं का एक किट भेंट किया गया। शिविर आयोजकों ने इस बात के लिए विशेष खुशी जाहिर की कि बिना पढ़ी-लिखी स्त्रियां भी स्वास्थ्य कार्यकर्ती का काम कर सकती हैं और पिछड़े इलाकों में भी कार्यक्रम को कारगर बनाया जा सकता है। □

साभार—आस्था, बंबई

क्या इस तस्वीर में दिखाई व्यवस्था सही है ? अपने विचार हमें भेजें । आप क्या बदलाव चाहेंगी ?

—संपादिका

नहीं हो सका कम
आजादी के तेतालिस साल बाद भी
हमारी जिंदगी का बोझ।

जमाने को गुजरता हम देखते रहे
खड़े वहीं के वहीं
क्या कहीं कुछ बदला है ?

एक बार देखो हमारी ओर
एक बार जिंदगी को देखो
हमारे नजरिए से
है नहीं वह एक बोझ से कम।

—सुहास

शिक्षा एक खिड़की है
जो जीवन में ताज़ी हवा का झोंका लाती है

शिक्षा एक दरवाजा है
जो अनेक नई राहों पर खुलता है

शिक्षा एक सीढ़ी है
जो हमें ऊपर उठने में मदद करती है

शिक्षा एक ज्योतिपुंज है
जो मन के अंधेरे दूर भगाता है